P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

सर्वधर्म समभाव व सदाचारोमय भारतीय संस्कृति का बदलता स्वरूप और चुनौतियाँ

महेश चन्द मीना
सह आचार्य,
भूगोल विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

भारतीय संस्कृति से अभिप्राय भारतीय जीवन शैली अर्थात् आचार, विचार, चिन्तन, दृष्टिकोण, विश्वास एवं व्यवहार प्रणाली से है जिसके दर्शन भारतीय जनजीवन मे परिलक्षित होते है। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है–अनेकता में एकता' जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश में सामाजिक संस्कृति का विकास हुआ। भारतीय संस्कृति का इतिहास आरम्भ से ही सहयोग, सहिष्णुता, परस्पर सदभाव, मैत्री, सामंजस्य और विश्व भावना जैसे श्रेष्ठ मूल्यों से अनुप्राणित रहा है।

भारत में भौगोलिक भिन्नता, प्रजातिय भिन्नता, सामाजिक भिन्नता, सांस्कृतिक भिन्नता इत्यादि के बहुमूल्य योगदान ने भारतीय संस्कृति को विशिष्ट पहचान प्रदान की है।

मुख्य शब्द : सर्वधर्म समभाव, सदाचार, विश्वबन्धुत्व, सहिष्णुता, विलक्षणता, सम्यक दृष्टि, शाश्वत, उत्कृष्ट, चुनौतियाँ।

प्रस्तावना

विश्व साहित्य के इतिहास में जिस तरह संस्कृत भाषा अत्यन्त प्राचीन है उसी तरह हमारे अंग–अंग में समाहित भारतीय संस्कृति न केवल प्राचीनतम है अपितु मानव–जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक होने के साथ ही सभी देशों के लिए प्रेरणास्पद रही है। भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता और महानता को कवि इकबाल की पंक्तियों द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है–

'यूनान, मिस्र, रोमां सब मिट गए जहाँ से
बाकी मगर है अब तक नामोनिशां हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।'

21 जून 2015 को ''विश्व योग दिवस'' के रूप में घोषणा करने के पश्चात अधिकांश देशों द्वारा इसे अपनाया जाना ही हमारी संस्कृति की महानता का ताजा उदाहरण है।

हिन्दू संस्कृति अत्यन्त विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक और मानवमात्र की लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति करने वाले है। मनुष्य मात्र का सुगमता से एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो? इसका जितना गम्भीर विचार भारतीय संस्कृति में किया गया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य जिन–जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है, और जो–जो क्रियाएँ करता है, उन सबको हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि–मुनियों ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित, मर्यादित एवं सुसंस्कृत रूप में वर्णन किया है और उन सभी का पर्यवसान परमश्रेय की प्राप्ति में किया है। श्री कृष्ण ने गीता में बड़े स्पष्ट शब्दों में शास्त्रानुसार आचरण करने के लिए इस प्रकार कहा है–

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।[1]

जो मनुष्य शास्त्रविधि छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को और न परमगति को ही प्राप्त होता है। अतः हमारे लिए कर्तव्य–अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है–ऐसा जानकर व्यक्ति को इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य–कर्म करने चाहिए। क्या करणीय है, क्या नहीं ? इसकी व्यवस्था में हमें शास्त्रों को ही प्रमाण मानना चाहिए। जो शास्त्रों के अनुसार आचरण करता है वह 'नर' होता है और जो मन के अनुसार (मनमाना) आचरण करता है वह वानर

होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने मनमाना आचरण करने वाले मनुष्यों को 'असुर' भी कहा है–

प्रवृतिं च निवृतिं च जना न विदुरासुराः।[2]

वेदों में भी सामाजिक स्वारस्य एवम् आदर्श प्रेरित मानव समाज के लिए नाना प्रकार की मर्यादाओं की चर्चा की गई है। यथा–

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः तासामेकामिदभ्यहरो गात्।[3]

अर्थात् हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, असत्य भाषण और इन पापों को करने वाले दुष्टों का सहयोग का नाम ही सप्तमर्यादा है। इनमें से एक भी मर्यादा का उल्लंघन करने वाला पापी होता है। वेद में जुआँ खेलने की निन्दा करते हुए कर्मठ जीवन बताकर कृषि आदि द्वारा परिश्रम पूर्वक धन प्राप्त करने की प्रशंसा की गई है। मीठे व सुन्दर वचन बोलने के लिए भी ऋग्वेद में प्रेरित किया गया है यथा–

धृतात् स्वादीयों मधुनश्च वोचत्।[4]

वेदों में विश्वबन्धुत्व की भावना अतिशय दृष्टिगत होती है। यहाँ अतिक्षुद्र संकीर्ण भावना या प्रतिस्पर्धात्मक राष्ट्रवाद की भावना से भी ऊपर उठकर सम्पूर्ण पृथ्वी को एक विशाल राष्ट्र के रूप में निरूपित करते हुए इसके समस्त प्राणियों में एक ऐसी विश्वबन्धुत्व की भावना को समाहित करने का उपदेश दिया गया है, जो अत्यन्त दुर्लभ है, यजुर्वेद में भी लिखा है–

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।[5]

अर्थात् मैं प्राणिमात्र को मैत्रीपूर्ण–दृष्टि से देखूँ तथा समस्त जीव भी मुझे मैत्रीपूर्ण निर्भय–दृष्टि से देखे। इस प्रकार हम एक दूसरे के लिए मित्रवत रहें। अथर्ववेद में भी भारतीय संस्कृति की महानता को परिभाषित किया गया है कि भूमि मेरी माता है तथा मै इसका पुत्र हूँ–

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[6]

वेदों में वर्णित विश्वजनित भावना आजकल के स्वार्थ प्रधान मानव समाज में एक ज्योति पूर्ण आशा का संचार करती है। वेदों में पुरूष के समान ही नारी को भी परिवार निर्माण में एक सहयोगी भूमिका के रूप में देखा गया है। उसे परिवार में आदर के साथ ''साम्राज्ञी'' की पदवी प्रदान की गई है। वैदिक वाङ्मय हमें बहुविध, व्यापक रूप में जीवन, समाज व्यवस्था बिन्दुओं पर समग्र रूप से चिन्तन प्रस्तुत करते हुए उत्थान की प्रेरणा देता है। सामंजस्य एवं प्रगतिशीलता ही वेद की सबसे बड़ी विशेषता है। इसी कारण ये हमें आज भी उतने ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते है जितने कि भूतकाल में कभी थे।

भारतीय संस्कृति से अभिप्राय भारतीय जीवन शैली अर्थात् आचार, विचार, चिन्तन, दृष्टिकोण, विश्वास एवं व्यवहार प्रणाली से है जिसके दर्शन भारतीय जनजीवन मे परिलक्षित होते है। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है–अनेकता में एकता' जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश में सामाजिक संस्कृति का विकास हुआ। भारतीय संस्कृति का इतिहास आरम्भ से ही सहयोग, सहिष्णुता, परस्पर सदभाव, मैत्री, सामंजस्य और विश्व भावना जैसे श्रेष्ठ मूल्यों से अनुप्राणित रहा है। हमारी संस्कृति में समाहित सर्वधर्म समभाव व मानव कल्याण की भावना प्राच्यकाल से ही सर्वोपरि रही है यथा–

सर्वे भवन्तुसुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग भवेत्।।

वसुधैव कुटुम्बकम् और अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना के दर्शन भी हमारे धर्म ग्रन्थों में इस प्रकार प्रकट होते है–

अयं निजः परावेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानाम् हि तु वसुधैवकुटुम्बकम्।।

भारतीय संस्कृति के मूल तत्व धर्म, अहिंसा, त्याग, तपस्या दया और सह–अस्तित्व सदियों से ही हमारी जीवन शक्ति के परिचायक रहे हैं यथा–

''जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का, पग–पग लगता डेरा, वह भारत देश है मेरा।[7]

भारत में भौगोलिक भिन्नता, प्रजातिय भिन्नता, सामाजिक भिन्नता, सांस्कृतिक भिन्नता इत्यादि के बहुमूल्य योगदान ने भारतीय संस्कृति को विशिष्ट पहचान प्रदान की है। भारतीय संस्कृति अस्मिता के दर्शन उसके आधारभूत भारतीय मूल्यों और सिद्धान्तों में दृष्टिगत होते है। भौगोलिक भिन्नता की शोभा पर मुग्ध होकर गुप्त जी कहते है–

भूलोक कागौरव, प्रकृति का पुण्यस्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय, और गंगा जल जहाँ ?
सम्पूर्ण देशों से अधिक, किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन भारत वर्ष है ?

भारतीय संस्कृति में लौकिकता को जीवन में गौण स्थान प्रदान किया गया है क्योंकि भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान है। मध्ययुगीन सन्तों की वाणी में आध्यात्मिकता की प्रधानता परिलक्षित होती है–

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कथ्यौ ज्ञानी।।
पानीकेरा बुदबुदा, अस मानस कीजात।
देखत ही छिप जात है, ज्यों तारा परभात।।

–कबीर

भारतीय संस्कृति की स्थापना एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति सहिष्णुता, पारस्परिक सदभाव व राष्ट्रीय भावना की वृद्धि में सहायक रही है। सदाचार युक्त होना भी भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान रही है हमारे धर्मग्रन्थों में इसको भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है।

सदाचार–प्रशंसा

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा,
यद्यप्यधीताः सह षड़भिरग्डैः।
छन्दांस्येनंमृत्युकाले त्यजन्ति,
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः।।[8]

अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरूक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष–इन छः अंगों सहित अध्ययन किये हुए वेद भी आचारहीन मनुष्य को पवित्र नहीं करते। ऐसे मनुष्य को मृत्युकाल में वेद वैसे ही छोड़ देते है, जैसे पंख उगने पर पक्षी अपने घोसले को छोड देता है। मनुष्य आचार से आयु को प्राप्त करता है, सदाचार से अभिलषित सन्तान को प्राप्त करता है, आचार से अक्षय धन को प्राप्त करता

है और आचार से अनष्टि लक्षण को नष्ट कर देता है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि–

दुराचारो हि पुरूषों लोके भवति निन्दितः।।
दुःख भागी च सततं व्यथितोऽल्पायुरेव च।।[9]

अर्थात् दुराचारी पुरूष संसार मे निन्दित, घृणित, सर्वदा दुख भागी, रोगी और अल्पायु होता है। महाभारत के उद्योग पर्व में भी सादाचार का महत्व बताया है कि सदाचार ही धर्म को सफल बनाता है, आचार ही धनरूपी फल देता है, आचार से मनुष्य को सम्पति प्राप्त होती है आचार ही अशुभ लक्षणों का नाश कर देता है। यथा–

आचारः फलते धर्मंआचारः फलते धनम्।
आचाराच्छियमाप्नोति आचारों हन्त्यलक्षणम्।।[10]

गौओं, मनुष्यों और धन से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे अच्छे कुलों की गणना में नहीं आ सकते। परन्तु थोड़े धन वाले कुल भी यदि सदाचार से सम्पन्न हैं तो वे अच्छे कुलों की गणना में आ जाते हैं और महान यश प्राप्त करते है। सदाचार की रक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए। धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता किन्तु जो सदाचार से भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिए। यथा–

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति में मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते।।[11]

नारद पुराण में भी कहा गया है कि मेरा ऐसा विचार है कि सदाचार से हीन मनुष्य का केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि नीच कुल मे उत्पन्न मनुष्यों का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है यथा–

आचार प्रभवों धर्मः धर्मस्य प्रचुरच्युतः।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः।।[12]

विष्णुपुराण में भी सदाचार के महत्त्व को परिभाषित किया है कहा है कि आचार से धर्म प्रकट होता है और धर्म के स्वामी भगवान विष्णु है, अतः जो अपने आश्रम के आचार में संलग्न है, उसके द्वारा भगवान श्री हरि सर्वदा पूजित होते है। सदाचारी मनुष्य इह लोक और परलोक दोनों को ही जीत लेता है। सत् शब्द का अर्थ साधु है और साधु वही है, जो दोष रहित हो। उस साधु पुरूष का जो आचरण होता है, उसी को सदाचार कहते है।

आचार हीनः पुरूषों लोके भवति निन्दितः।
परत्र च सुखी न स्यातस्मादाचारवान् भवेत्।।[13]
सदाचारवतापुंसाजितौ लौकावुभावपि।।[14]

देवी भागवत पुराण में भी सदाचार का महत्व बताते हुए कहा है कि आचारहीन मनुष्य संसार में निन्दित होता है और परलोक में भी सुख नहीं पाता, इसलिए सभी को आचारवान होना चाहिए। आचार से ही आयु, सन्तान तथा प्रचुर अन्न की उपलब्धि होती है। आचार सम्पूर्ण पातको को दूर कर देता है। मनुष्यों के लिए आचार को कल्याणकारक परम धर्म माना गया है। आचारवान् मनुष्य इस लोक में सुख भोगकर परलोक में सुखी होता है। भगवान नारायण ने भी कहा है कि आचारवान् मनुष्य सदा पवित्र, सदा सुखी और सदा ही धन्य है यथा–

आचारवान् सदा पूतः,सदैवचारवान् सुखी।
आचारवान् सदा धन्यः, सत्यं सत्यं च नारदः।।[15]

अध्ययन का उददेश्य

वर्तमान समय में उचित शिक्षा, संगति, वातावरण आदि का अभाव होने से समाज में उच्छृंखलता बहुत बढ़ चुकी है। शास्त्रों के बताये अनुसार क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसे नयी पीढी के लोग जानते भी नहीं है और जानना चाहते भी नहीं है। और जो लोग बताना चाहते है उनकी बात नहीं मानकर हँसी उडाते है। लोगों की अवहेलना के कारण हमारे अनेकानेक धार्मिक ग्रन्थ लुप्त होते जा रहे है। और उपलब्ध ग्रन्थों को पढ़ने वाले भी बहुत कम है। पढ़ने की रूचि भी नहीं है और समय भी नहीं है वर्तमान समय में आधुनिकता की अन्धी दौड़ में शास्त्रों को जानने वाले, बताने वाले और तदनुसार आचरण करने वाले सत्पुरूष दुर्लभ से हो गये है। सदाचार व अन्य सभी विशेषताओं ने जहां भारतीय संस्कृति को विलक्षणता प्रदान की है वहीं जातीय, धार्मिक, और प्रादेशिक विविधताओं ने और सामाजिक कुरीतियों ने इसकी अस्मिता को अत्यधिक क्षति पहुँचाई है।

चुनौतियाँ

आधुनिकीकरण, मशीनीकरण और सूचना विस्फोट के इस युग मे अनेक कारकों का उद्भव हुआ है जिन्होंने भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है कि जैसे भौतिकवादी पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण ने भारतीयों में प्रदर्शनवाद, फैशन और भोगवादी प्रवृतियों का विकास किया है। मौल संस्कृति के विकास व बाजारीकरण के दौर ने हमारा चारित्रिक पतन किया है। भारत के सभी सम्प्रदायों मे अन्धविश्वास व रूढिवादिता ने सांस्कृतिक अस्मिता को रोगग्रस्त बनाया है। साथ ही साम्प्रदायिकता के जहर ने भी हमारे राष्ट्र की नींव को खोखला किया है। विभिन्न धर्मो की शिक्षाएँ परस्पर प्रेम, सदभावना, सौहार्द व शान्ति का सन्देश देती है किन्तु मजहब के नाम पर झूठा उन्माद और मानव जाति में श्रेष्ठता के अहम ने पारस्परिक वैमनस्य, घृणा, आतंक, प्रान्तीयता, सन्देह, साम्प्रदायिक विद्वेष इत्यादि गहन समस्याओं को भी जन्म दिया है। वर्तमान समय में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि ने जनमानस में तनाव, आशंका और संशय की भयानक स्थिति उत्पन्न कर दी है। प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता व भाषाई उन्माद ने पृथकतावदी व अलगाववादी प्रवृतियों को जन्म दिया है, जिससे देश की एकता खण्डित हुई है। आतंकवाद की समस्या भी एक संक्रामक रोग की भांति है जिसने विकट रूप ग्रहण कर लिया है। पंजाब, असम, गुजरात, बिहार, उत्तरप्रदेश इत्यादि सभी राज्यों में आतंकवाद की घटनाओं ने आतंकित किया हुआ है। 'काश्मीर समस्या' ने तो भारत–पाकिस्तान के मध्य अघोषित युद्ध का रूप धारण कर लिया है। हाल ही में घटित 'पुलवामा' की घटना ने कटुता को और अधिक बढ़ा दिया है।[16] भ्रष्टाचार भी धीमा जहर व दीमक की भाँति है जिसने राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक धरोहर को व्यापक क्षति पहुँचाई है। इसके कारण सामाजिक आर्थिक विषमताओं की मुट्ठी भर खाई ने बृहदतर रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार की अनेकानेक चुनौतियाँ हमारी सांस्कृतिक अस्मिता के समक्ष बढ़ती ही जा रही है। इन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक कुरीतियों ने हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को क्षीण किया है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता भारतीय जीवन पद्धति में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान समय की चुनौतियों व कुरीतियों का समाधान केवल कानून निर्माण से ही संभव नहीं है अपितु आवश्यकता है नवीन युगबोध, सम्यक दृष्टि व कर्त्तव्य बोध की। इस हेतु प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र निर्माण के इस पुनीत यज्ञ में अपना योगदान देना चाहिए। साथ ही प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र उत्थान हेतु अपनी भूमिका पर पुनर्विचार करना चाहिए, जिससे वे सांस्कृतिक अक्षुणता के सशक्त प्रहरी के रूप में अपना योगदान दे सके। हम सभी अध्यापन, पाठ्यसहगामी क्रियाओं सदव्यवहार, पाठ्यचर्चा, प्रार्थना सभा इत्यादि विभिन्न गतिविधियों के आयोजन से नवयुवकों को देश की सांस्कृतिक विरासत व धरोहर का अमूल्य ज्ञान प्रदान कर उन्हें नवजागरण हेतु अभिप्रेरित कर सकते है। आज समय की मांग है कि देश अपनी सांस्कृतिक अक्षुण्णता के उस आलोक से पुनः प्रकाशित हो जिसकी गौरव गाथा सदियों से विश्व पटल पर गुंजायमान रही है। क्योंकि हमारी संस्कृति सदाचार परक पुरातन व समृद्ध है। जब संसार के अन्यदेशों के लोग अज्ञानान्धकार से आवृत थे, अक्षर ज्ञान से रहित थे, तब भारत में तपोधन की ज्ञान रश्मियाँ विकीर्ण थी। भारतीय संस्कृति गम्भीर अतल पयोनिधि है। इसमें निमज्जित होकर युगों–युगों तक मोतियों का अन्वेषण किया जा सकता है। अनादिकाल से शाश्वत प्रवाहमान संस्कृति के दिव्य आलोक का ही सुपरिणाम है कि भारत आज भी विश्व में अपना उत्कृष्ट स्थान बनाये हुए है। भौतिकवाद व पाश्चात्य अन्धानुकरण के इस युग में पुनर्जागरण की महति आवश्यकता है। क्योंकि 'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता' की भाँति यह अपार, अगणित, अतुल, उत्कृष्ट मानवीय आदर्शो व गुणों की खान है। जयशंकर प्रसाद जी के शब्दों में–

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य और उस यश का विमल प्रचार।
एकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारम्बार।
आज कितनीशताब्दियों बाद,उठा ध्वंसों में यह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकीसुने दिगंत, विश्व वाणी का बने विहार।

अंत टिप्पणी

1. *श्रीमद भगवद् गीता 16/23–24*
2. *श्रीमदभगवद गीता 16/7*
3. *ऋग्वेद 10/5/6*
4. *ऋग्वेद 8/24/20*
5. *यजुर्वेद 36/18*
6. *अथर्ववेद 12/1/12*
7. *देश के इस दौर में संस्कृत, संस्कृति और सांस्कृतिक अस्मिता की चुनौतियाँ–डॉ हुकुम सिंह, प्रथम संस्करण 2014 पृ. सं. 3*
8. *वसिष्ठ स्मृति 6/3, देवी भागवत 11/2/1*
9. *मनुस्मृति 4/157, वसिष्ठ स्मृति 6/6*
10. *महाभारत उद्योग पर्व 113/15*
11. *महाभारत उद्योग पर्व 34/41*
12. *नारद पुराण पूर्व. 4/22*
13. *शिव पुराण, वा. उ. 14/56*
14. *विष्णु पुराण 3/11/2*
15. *देवी भागवत् पुराण 11/24/98*
16. *पुलवामा (जम्मू–कश्मीर) आतंकवादी घटना 14 फरवरी, 2019*